भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,

अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2024

ISBN : **978 - 81 - 89435 - 66 - 0**

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

संस्कृति और समाज

सुर्मिला यादव
सहायक आचार्य (समाज विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

संस्कृति :

संस्कृति शब्द संस्कृत धातु 'संस्कृ' से बना है, जिसका अर्थ है — सुधारना, परिष्कृत करना या उत्कृष्ट बनाना। यह मनुष्य के विचारों, भावनाओं, विश्वासों, परंपराओं और व्यवहारों की वह समग्र प्रणाली है, जो समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एडवर्ड टायलर के अनुसार — ''संस्कृति वह जटिल संपूर्णता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज और मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य क्षमताएँ सम्मिलित होती हैं।''

संस्कृति केवल बाह्य व्यवहार नहीं, बल्कि मनुष्य के आंतरिक संस्कारों, मूल्यबोध और दृष्टिकोणों का प्रतीक भी है।

भारतीय परम्परा में संस्कृति का स्वरूप केवल बाहरी उपलब्धियों या भौतिक साधनों के संचय तक सीमित नहीं माना गया है, बल्कि यह निष्ठावान, तपोमूलक, आत्मसंयमी तथा स्वाध्यायप्रिय जीवनचर्या से निर्मित एक ऐसी मूल्यप्रणाली है जो मानव के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। हमारे मनीषियों ने अपने तपोमूलक जीवन में निरंतर यह प्रतिपादित किया कि मानव-निर्माण का सर्वोच्च साधन और जीवन का अंतिम लक्ष्य संस्कृति ही है।

संस्कृति, मनुष्य की सूझ-बूझ, सृजनात्मकता और प्रयत्नों से उपजी हुई एक ऐसी चेतना है जो उसकी उपलब्धियों और परम्पराओं के रूप में संचित होती रहती है। जो कुछ भी मनुष्य प्रकृति से प्राप्त उपादानों का रूपान्तरण करके रचता है, वही संस्कृति कहलाती है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से प्रकृति और संस्कृति का भेद सामने आता है। प्रकृति मनुष्य की कृति नहीं है, वह एक स्वतंत्र, स्वत: सिद्ध व्यवस्था है, जबकि संस्कृति मनुष्य की रचनात्मकता का परिणाम है।

संस्कृति का आधार भौतिकता नहीं बल्कि भावप्रधानता है। समत्व भाव को

संस्कृति की आत्मा कहा गया है। यही कारण है कि संस्कृति छोटे-छोटे निमित्तों और सीमित साधनों के द्वारा भी गहन भावनाओं और व्यापक उद्देश्यों को सम्पन्न कर देती है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो संस्कृति वस्तुओं का संग्रह न होकर भावों का अनुष्ठान है।

संस्कृति का संबंध मनुष्य के आन्तरिक जीवन से है। उसके चिंतन, मनन, विचार और आत्मिक स्वीकरण के द्वारा ही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निमाज़्ण होता है। यह केवल बाह्य रूप या व्यवहार तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह मानव के मानसिक, आत्मिक और सामाजिक स्वरूप को पूर्णत: प्रकट करती है।

संस्कृति मानव के गुणों का अक्षय भंडार है। यह एक ऐसा अनुपम कोष है जिसमें मानवीय जीवन को उच्च और श्रेष्ठ बनाने वाले सभी गुण समाहित हैं। संस्कृति का वास्तविक उद्देश्य मानव की आत्मा का परिष्कार करना है। उसकी चेतना-शक्ति को जाग्रत करके उसमें विशिष्ट गुणों का विकास करना और उन गुणों से संपन्न एक आदर्श समाज की रचना करना ही संस्कृति का ध्येय है।

यही कारण है कि भारतीय मनीषियों ने संस्कृति को केवल किसी विशेष काल या समाज तक सीमित न मानकर सर्वकालिक और सार्वभौमिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया। यह मानव-निर्माण की दिशा में सतत जागरूक रहने वाली प्रक्रिया है, जो व्यक्ति से लेकर समाज और समाज से लेकर सम्पूर्ण मानवता तक को प्रभावित करती है।

भारतीय दृष्टि में संस्कृति जीवन की समग्रता है जिसमें धर्म, दर्शन, कला, स्थापत्य और सामाजिक व्यवहार के प्रगतिशील आदर्श सभी सम्मिलित होते हैं। इसे किसी एक पक्ष तक सीमित करना उचित नहीं है, क्योंकि संस्कृति संपूर्णता में निहित और निरंतर प्रगतिशील है।

संस्कृति का स्वरूप देश, काल और समाज के अनुरूप बदलता रहता है। जैसे गुप्तकाल की चित्रकला और स्थापत्य अपने समय की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, वहीं मुगलकाल की शैली भिन्न सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों को प्रकट करती है। अत: विभिन्न युगों की सांस्कृतिक शैलियों को एक समान मानना उचित नहीं है।

संस्कृति एक प्रवाहमान आचरण और आत्माभिव्यक्ति है। यद्यपि रूप और अभिव्यक्ति बदलते रहते हैं, परंतु उसका मूल भाव समान और चिरस्थायी रहता है। इसी तथ्य को जॉर्ज पीटर मर्डाक ने रेखांकित किया कि संस्कृति परंपरागत होते हुए भी समय-समय पर और क्षेत्र-क्षेत्र में बदलती रहती है।

संस्कृति को केवल विचारों या परम्पराओं का समूह मानना पर्याप्त नहीं है। यह वास्तव में मानव समुदाय के जीवन की एक अर्थपूर्ण व्यवस्था है, जिसमें उसके विचार, आचार, व्यवहार और परम्पराएं संगठित रूप में विद्यमान रहती हैं। संस्कृति वह माध्यम

है जिसके द्वारा मानव-व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है। यही संस्कृति व्यक्ति के जीवन को परिष्कृत करती है और उसे परिपूर्णता की ओर अग्रसर करती है।

समाज :

समाज व्यक्तियों का एक संगठित समूह है जो समान उद्देश्यों, हितों, परंपराओं और मान्यताओं के आधार पर एक-दूसरे से जुड़ा होता है। समाज स्थिर नहीं, बल्कि एक गतिशील और विकासशील इकाई है। मनुष्य स्वभावत: सामाजिक प्राणी है — वह समाज में रहकर ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और व्यक्तित्व का विकास करता है।

समाज में विभिन्न संगठन, संस्थाएँ, परंपराएँ और वर्ग मिलकर जीवन का ढाँचा बनाते हैं। इस ढाँचे को सजीव और सशक्त बनाती है — 'संस्कृति'।

संस्कृति केवल व्यक्तियों के जीवन को ही नहीं बल्कि पूरे समुदाय की विशेषताओं को भी प्रकट करती है। विभिन्न मानव समुदायों की भिन्नता का आकलन उनकी संस्कृति के आधार पर ही किया जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक समाज का सांस्कृतिक रूप उसकी कार्य-प्रणाली और विश्वास-व्यवस्था की वास्तविक अभिव्यक्ति होता है। समाज के सरल से सरल व्यवहार से लेकर जटिलतम गतिविधियों तक की झलक उसी संस्कृति में मिलती है।

समाजशास्त्री राल्फ मिल्टन का विचार भी इसी को पुष्ट करता है। उनका कहना है कि किसी भी विशेष समाज के सदस्यों की संगठित और बार-बार दोहराई जाने वाली प्रतिक्रियाएं ही उस समाज की संस्कृति की अभिव्यक्ति होती हैं। इस दृष्टि से संस्कृति को समाज की संगठित जीवन-शैली और उसकी स्थायी प्रतिक्रियाओं का दर्पण कहा जा सकता है।

किसी भी समाज को केवल इस आधार पर सुसंस्कृत नहीं कहा जा सकता कि वह संपूर्ण रूप से उच्च आदर्शों वाला है, क्योंकि किसी भी समाज में सभी व्यक्ति समान रूप से सुसंस्कृत नहीं होते। संस्कृति का वास्तविक अस्तित्व समाज की संपूर्ण संरचना में नहीं, बल्कि व्यक्तियों के जीवन में निहित होता है। सामान्यत: किसी समाज में सांस्कृतिक विकास विशेष रूप से उन समूहों में दिखाई देता है जो ज्ञान, साहित्य, दर्शन और कला के क्षेत्र में सक्रिय रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों और समूहों के प्रयासों से ही समाज में बौद्धिक और नैतिक उन्नति होती है।

जब मनुष्य का सांस्कृतिक विकास बढ़ता है तो समाज में संघर्ष कम होने लगते हैं, और इसके साथ ही साहित्य, कला तथा विज्ञान जैसे क्षेत्रों में सृजनात्मक प्रगति होती है। इस प्रकार संस्कृति और समाज का संबंध अत्यंत गहरा है—दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

अन्य शब्दों में कहा जाए तो संस्कृति समाज की आत्मा है, क्योंकि समाज

व्यक्तियों की इकाइयों से निर्मित होता है और व्यक्ति का आचरण, परम्परा, शिक्षा तथा कलात्मकता संस्कृति के मूल तत्व हैं। जब किसी समाज में इन तत्वों का व्यापक रूप से पालन और सम्मान होता है, तब वह समाज उन्नत और सुसंस्कृत कहलाता है; और जब इनका ह्रास होता है, तब वही समाज अवनति की ओर अग्रसर हो जाता है।

संस्कृति का सामाजिक परिवेश से अत्यंत गहरा और अविभाज्य संबंध है। वास्तव में, किसी समाज की संस्कृति को समझने के लिए उसके सामाजिक परिवेश का अध्ययन अनिवार्य है। विभिन्न देशों और समाजों की संस्कृतियों में पाए जाने वाले अंतर इसी तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक संस्कृति अपने सामाजिक वातावरण की उपज होती है।

प्रत्येक देश में कला, साहित्य, दर्शन और जीवन-दृष्टि पर उस देश के सामाजिक परिवेश की गहरी छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। हमारे धर्म, स्वर्ग-नरक की अवधारणाएं, नैतिक विचार और जीवन-दर्शन सब कुछ उसी परिवेश से प्रभावित होते हैं, जिसमें हम जीते और सोचते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि मानव संस्कृति, मानव परिवेश की प्रत्यक्ष उपज है।

संस्कृति और समाज का विकास एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे संस्कृति का विस्तार होता है, वैसे-वैसे समाज भी प्रगतिशील बनता है; और जब समाज का परिवेश विकसित होता है, तो संस्कृति स्वत: ही समृद्ध होती जाती है। इस प्रकार दोनों का संबंध परस्पर पोषणात्मक है।

मानव समाज मूलत: दो तत्वों—वंश परम्परा और वातावरण पर आधारित होता है। वातावरण से आशय उन सीखी हुई आदतों से है जो व्यक्ति सामाजिक जीवन में निरंतर अपनाता है—जैसे बोलने-चालने की शैली, भोजन करने की आदतें, कार्य करने के तरीके आदि। ये सभी व्यवहारिक तत्व संस्कृति का ही अंग हैं। इस प्रकार संस्कृति को समाज की आदतों, परम्पराओं और आचरण की संगठित अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, संस्कृति का प्रभाव केवल उसके बाह्य लक्षणों या प्रतीकों के कारण नहीं होता, बल्कि यह उस व्यक्ति की जैविक और मानसिक अवस्था पर भी निर्भर करता है जो संस्कृति को ग्रहण करता है। इस प्रकार, समाज और व्यक्ति दोनों मिलकर संस्कृति के निर्माण और उसके विकास में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

संस्कृति और समाज का संबंध अत्यंत घनिष्ठ और अविच्छेद्य है। संस्कृति समाज का स्वरूप है, और समाज संस्कृति का आधार। समाज के बिना संस्कृति उत्पन्न नहीं हो सकती, क्योंकि संस्कृति मनुष्य के समूह में ही पल्लवित होती है। दूसरी ओर, संस्कृति के बिना समाज दिशाहीन और अव्यवस्थित हो जाता है।

अब तक के समस्त विमर्श से यह तथ्य पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति और समाज के बीच एक अटूट, पारस्परिक और जीवंत संबंध विद्यमान है। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। संस्कृति समाज की आत्मा है और समाज संस्कृति की अभिव्यक्ति का क्षेत्र। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो जहाँ समाज एक संगठित जीवन व्यवस्था है, वहीं संस्कृति उस व्यवस्था के नैतिक, बौद्धिक और भावनात्मक मूल्य प्रदान करती है।

अनेक विद्वान संस्कृति और समाज को दो पृथक अवधारणाएँ मानकर उनका अध्ययन करते हैं, परन्तु वस्तुत: यह दृष्टिकोण अधूरा है। बिना संस्कृति के कोई समाज नहीं बन सकता, क्योंकि संस्कृति ही वह आधार है जो समाज के व्यक्तियों को समान मूल्य, आचरण और जीवन-दृष्टि प्रदान करती है। इसीलिए प्रसिद्ध समाजशास्त्री हॉवेल ने इसे एक समीकरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा — बुद्धि + संस्कृति = समाज।

इस सूत्र में 'बुद्धि' से तात्पर्य मानव की तार्किक चेतना और विचार-शक्ति से है, जबकि 'संस्कृति' उस चेतना का भावनात्मक और नैतिक रूपांतरण है। जब ये दोनों एक साथ कार्य करते हैं, तभी संगठित समाज का निर्माण संभव होता है।

किसी भी समाज को पूर्णत: एकरूप या जातीय रूप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि प्रत्येक समाज में विविध उपसमूह विद्यमान रहते हैं। ये उपसमूह लिंग (पुरुष-स्त्री), आयु (बालक-वयस्क), पेशा, धर्म, जाति या परम्परा के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। प्रत्येक उपसमूह की अपनी आचरण संहिता और सामाजिक मर्यादाएँ होती हैं, जो उसके सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित और मार्गदर्शित करती हैं।

इन उपसमूहों की संहिताएं और मर्यादाएँ ही धीरे-धीरे समाज की सामूहिक सांस्कृतिक परंपरा का रूप धारण करती हैं। उदाहरण के लिए, भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में प्रत्येक जाति, भाषा, या प्रदेश की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान है, किंतु जब ये सब मिलकर एक व्यापक सामाजिक एकता बनाते हैं, तब वह संपूर्ण भारतीय संस्कृति का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

इस प्रकार संस्कृति समाज के भीतर से ही उत्पन्न होती है और उसी में विकसित होती है। समाज संस्कृति को अपने अनुभव, परम्परा और मूल्यों के माध्यम से आकार देता है। दूसरी ओर, संस्कृति समाज को दिशा, आदर्श और पहचान प्रदान करती है। यही कारण है कि जब किसी समाज की संस्कृति उच्च आदर्शों, नैतिक मूल्यों और रचनात्मकता पर आधारित होती है, तो वह समाज स्वत: ही उन्नत कहलाता है। और जब समाज अपनी संस्कृति की उपेक्षा करता है, तो वह नैतिक और बौद्धिक पतन की ओर अग्रसर होता है।

संस्कृति और समाज का यह संबंध केवल एक युग तक सीमित नहीं, बल्कि

इतिहास के प्रत्येक काल में सक्रिय और प्रभावशाली रहा है। वैदिक युग में वेदों और यज्ञों पर आधारित जीवनशैली ने समाज को एक विशिष्ट सांस्कृतिक ढांचा दिया। गुप्तकाल में साहित्य, दर्शन और कला के उत्कर्ष ने समाज को एक समृद्ध सांस्कृतिक पहचान दी। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन ने धार्मिक और सामाजिक स्तर पर संस्कृति को नई दिशा दी। आधुनिक युग में शिक्षा, विज्ञान और लोकशाही मूल्यों ने संस्कृति को प्रगतिशील रूप प्रदान किया। इस निरंतरता से स्पष्ट होता है कि संस्कृति ही समाज की चेतना का आधार है।

निष्कर्षत:, यह कहा जा सकता है कि संस्कृति और समाज के बीच का संबंध सृजन और अभिव्यक्ति का है — संस्कृति समाज को आत्मा देती है, और समाज उसे रूप देता है। दोनों एक-दूसरे के बिना न तो अस्तित्व में रह सकते हैं और न ही विकास कर सकते हैं।

❑❑❑